SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का सामाजिक विचारः एक विवेचन

राजेश्वर बैठा, अर्थशास्त्र विभाग
गोपेश्वर कॉलेज, हथआ गोपालगंज, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
राजेश्वर बैठा
E-mail : rbaithagopeshwarcollege@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 15/09/2025
Revised on : 15/11/2025
Accepted on : 25/11/2025
Overall Similarity : 00% on 17/11/2025

शोध सार

भारतीय समाज प्राचीनकाल से ही अत्यन्त जटिल सीढ़ीनुमा रहा है। इसमें अन्तिम पायदान पर समाज की 20 प्रतिशत वैसी आबादी है, जिसे बहिस्कृत व अछूत माना गया। इन्हें हिन्दू धर्मग्रन्थों में अस्पृश्य या अछूत कहा गया। उन्हें पशुतुल्य जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया और वर्गीकरण के आधार पर हजारों वर्षों से इन्हें सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से उपेक्षित रखा गया। ऐसे समाज को सिर्फ डॉ. अम्बेडकर भी भुक्तभोगी थे, बल्कि उस अमानवीय उपेक्षाओं का दंश उनके समाज व परिवारों ने झेला।

मुख्य शब्द

अस्पृश्य, जातिप्रथा, वर्णभेद, ब्राह्मण, बहिस्कार, बौद्धधर्म.

अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में जब डॉ. अम्बेडकर विद्या अध्ययन कर रहे थे, उसी समय उन्होंने प्राचीन भारतीय समाज से जुड़े कई शोधपूर्ण आलेख लिखे। इससे स्पष्ट होता है कि डॉ. अम्बेडकर छात्र जीवन से ही भारतीय समाज के प्रति सूक्ष्मव गहराई से चिंतन कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ अमेरिका व इंग्लैण्ड में अध्ययन, मनन और चिंतन करते हुए उन्होंने न सिर्फ वहाँ के प्रगतिशील समाज को देखा, बल्कि वहाँ के स्वतंत्रता एवं समता युक्त सामाजिक वातावरण से अत्याधिक प्रभावित हुए जिसकी तुलना भारतीय समाज से स्वाभाविक ही था।

पष्ठभूमि सामान्य

मूलतः वैदिक काल में किसी भी प्रकार के सामाजिक विभेद नहीं था। सामाजिक विभेद की बुनियाद उत्तरवैदिक काल में डाली गयी। यद्यपि आर्य जनजातियों और अनार्य जनजातियों (जैसे–दास, दास्यु, असुर, नाग आदि)

को मिलाकर चार वर्गों वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया गया। आर्यों ने अपनी जनजाति को तीन वर्गों में विभाजन किया– ब्रह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा बाद के कालक्रम में अनार्य जनजातियों को मुख्यतः शूद्र वर्ण के अन्तर्गत रखा गया। इसी मुख्य आधार पर आगे चलकर सदियों पश्चात् भारतीय समाज–व्यवस्था विकसित होते चली गई[1] जो आज भी कई रूपों में मौजूद है।

चार्तुवर्ण व्यवस्था

भारतीय समाज व्यवस्था में समाज को मुख्यतः चार भागों में बाँटा गया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।[2] इन सामाजिक वर्णों के कर्त्तव्य (कर्म) एवं धर्म निर्धारित कर दिये गये। ब्राह्मण का कार्य एवं धर्म अध्ययन–अध्यापन, यज्ञ तथा कर्मकांड करना–करवाना, दान लेना–देना आदि। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के लिए वेद का अध्ययन भी आवश्यक बतलाया गया है।[3] क्षत्रिय का कार्य एवं धर्म राजा, सैनिक अर्थात् राजव्यवस्था–'प्रजा की रक्षा करना, शासन करना, यज्ञ अध्ययन करना तथा नृत्य–संगीत–भागादि विषयों में आशक्त होना।[4] वैश्य का कार्य एवं धर्म–'पशुओं का रक्षण, दान, यज्ञ अध्ययन, वाणिज्य, महाजनी, ब्याज लेना, कृषि तथा पशुपालन आदि।[5] शूद्र का कार्य एवं धर्म उपरोक्त तीनों वर्णों का बगैर निन्दा किए सेवा करना[6] निर्धारित किया गया।

डॉ. अम्बेडकर के पूर्व भारतीय समाज मुख्यतः वर्ण–भेद, जाति–भेद, और छुआछूत आदि विषमता पर आधारित था, जिसमें वर्ण–भेद, जाति–भेद, श्रेणीबद्ध किया गया था। यह ऐसी व्यवस्था है, जिसमें वर्णों तथा जाति की प्रतिष्ठा तथा कार्य धर्म आधारित है। भारतीय समाज–व्यवस्था एक जटिल सामाजिक प्रणाली है, कि किसी व्यक्ति के पद तथा प्रतिष्ठा में अपेक्षाकृत परिवर्त्तन हों, परन्तु वह जिस वर्ण में पैदा हुआ है, उस वर्ण के सदस्य के रूप में उसकी सामाजिक स्थिति दूसरे वर्ण के दूसरे व्यक्ति के सामने किसी भी तरह प्रभावित न हों।[7] ऐसा वर्ण–व्यवस्था असामाजिक, बर्बर तथा अशिष्ट है इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण–व्यवस्था को किसी भी रूप में अंगीकार नहीं किया।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहते हैं–'ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त (अर्जन) करना चाहिए, क्षत्रिय को शस्त्र चलाने की शिक्षा लेनी चाहिए, वैश्य को व्यवसाय करनी चाहिए तथा शूद्र को सेवा करनी चाहिए। फिर शूद्र को धन एवं शिक्षा प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है, जब तीनों वर्ण उसकी मदद करने के लिए मौजूद है? शूद्र को शिक्षा प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। जब दूसरी आवश्यकता होने पर पढ़ने–लिखने (ज्ञान–अर्जन) के लिए वह ब्राह्मण के पास जा सकता है। जब क्षत्रिय उसे रक्षा करने के लिए तैयार है, तब उसे शस्त्र धारण करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार तो चार्तुवर्ण के सिद्धांत से ऐसा स्पष्ट होता है कि यह व्यवस्था न तो अपने– आप में एक परिपूर्ण व्यवस्था है और न ही छलपूर्ण उद्देश्यों से मुक्त है।[8]

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर एक प्रबुद्ध व प्रगतिशील समाजशास्त्री थे, इसलिए उन्होंने वर्ण–व्यवस्था का समाजशास्त्रियों की दृष्टि से समझा तथा अपने स्तर से विश्लेषण करने का प्रयत्न किया साथ ही वर्ण व्यवस्था को किसी भी दृष्टिकोण से सही व तार्किक नहीं माना। "सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था हेतु वर्ण विभाजन भले ही अपेक्षित समझा गया हो, किन्तु कालान्तर में उसका कोई सुनिश्चित स्वरूप तथा आदर्श नहीं रहे। यद्यपि उसका आधार गुण माना गया, किन्तु वह जन्म के अनुसार व्यक्ति, प्रतिष्ठा एवं योगदान में सिमट कर रह गई। जन्म से ही ब्राह्मण, भले ही वह मूर्ख हों, जन्म से ही क्षत्रिय भले ही वह कायर व डरपोक हों, जन्म से ही वैश्य भले ही भीख मांगते हों तथा शूद्र भी जन्म से ही भले ही वह ज्ञानी, धनी, सबल और कमाऊ पुत्र ही क्यों न हों? अतः गुण–कर्म की दृष्टिकोण से वर्णों के अधिकार तथा कर्त्तव्य सुरक्षित नहीं रह पाये क्योंकि समस्त सत्ता ब्राह्मण वर्ग के पास था। फलस्वरूप समस्त भारतीय समाज वर्ण–विभाजन की जगह जाति–विभाजन की स्थिति में पहुँची, जिस कारण बहुसंख्यक भाग ऊँच–नीच, भेद–भाव, अन्याय एवं शोषण आदि के शिकार हो गये। इस प्रकार मानवीय व नैतिक दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था पूर्णतः अव्यवहारिक साबित हुई।[9]

जातिप्रथा

प्राचीन काल से 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक सम्पूर्ण भारतीय समाज जातिप्रथा के शिकंजे में जकड़ा हुआ है।

जातिप्रथा को स्पष्ट करते हुए प्रख्यात समाजशास्त्री जी.बी. सेन ने–"इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ हिन्दूज्म" में कहा–"क्या धर्म में कोई ऐसा सिद्धांत नहीं, जिसका सभी हिन्दू अपने–अपने मतभेदों के बावजूद पालन करना स्वेच्छया अपना कर्त्तव्य समझतें हों। इस बारे में मतभेद हो सकता है, कि हिन्दू धर्म में कौन–कौन से मूल तत्त्व हों किन्तु इस बात में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि–"हिन्दू धर्म का एक मुख्य और अभिन्न अंग है–जाति। प्रत्येक हिन्दू वह चाहे सिर्फ सनातनी हिन्दू क्यों न हो, जाति में गहरी विश्वास करता हो और इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू की जो सनातनी हिन्दू होने पर गर्व करता है, एक जाति होती है। हिन्दू उसी प्रकार जाति में पैदा होता है, जिस प्रकार वह हिन्दू धर्म में पैदा होता है। सत्य तो यह है कि कोई भी व्यक्ति हिन्दू धर्म में तब तक पैदा नहीं समझा जा सकता जब तक किसी जाति में पैदा न हुआ हों। इसी प्रकार जाति और धर्म (हिन्दू) एक–दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते हैं।[10]

जातिप्रथा के बारे में प्रो. मेक्समूलर ने कहा–"आधुनिक हिन्दू धर्म जाति पर स्थित है, जैसे लगता है वह किसी चट्टान पर हों और जिसे कोई हिला नहीं सकता।[11]

जातिप्रथा की उत्पत्ति के संबंध में कई विद्वानों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं कि उसका मुख्य कारण जन्म, व्यवसाय, गंदगी, वर्ण बहिष्कार आदि हैं, किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जाति का मूलाधार चार्तुवर्ण–व्यवस्था को ही माना है। वर्ण चार हैं, और जाति कई। वर्ण का मूलाधार गुण व कर्म हैं, जब कि जाति का मूल संबंध जन्म से ही हैं। वर्ण अपरिवर्त्तननीय है, किन्तु जाति परिवर्त्तनशील है। वर्ण–व्यवस्था में जहाँ कर्त्तव्य पर आधारित है, वहीं जाति प्रथा में अधिकार पर बल दिया गया है। वर्ण की उत्पत्ति दिव्य तथा ईश्वरीय मानी गई है, जबकि जाति की उत्पत्ति में व्यवसाय, गंदगी आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

डॉ. अम्बेडकर कहते हैं–प्राचीन काल से ही जातिप्रथा के सबल एवं स्त्री–पुरुष की संख्या समान रखने के लिए ब्राह्मणों ने चार रास्ते सुझाए हैं (क) मृत पति के साथ स्त्री को जला देना, (ख) स्त्री पर मृत्यु तक विधवापन लादना, (ग) विधुर पर ब्रह्मचचर्य थोपना और (ध) कम उम्र की लड़की का विवाह अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ करना। इन परम्परागत बंधनों के कारण जाति–व्यवस्था अधिक मजबूत होती गयी। धीरे–धीरे इन सभी बंधनों का उदात्तीकरण किया गया। अपने इस विचार को कई प्रमाणों के साथ स्पष्ट करते हुए डॉ. अम्बेडकर यह प्रमाणित करते हैं कि "जाति अन्तर्गत विवाह ही जातिप्रथा को सुरक्षित रखने के लिए मूलभूत कारण हैं।[13]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार–समाज कभी व्यक्ति से नहीं बनता बल्कि वह वर्ग से ही बनता है। प्रत्येक समाज में वर्ग अस्तित्व में रहते हैं। वर्ग रचना के मूल में निहित कारण कई अलग–अलग होते हैं। कभी आर्थिक, कभी बौद्धिक, कभी सामाजिक, कभी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारणों से वर्ग निर्मित होते हैं। व्यक्ति किसी–न–किसी वर्ग के अंग बनकर ही जीना चाहता है। यह एक सर्वव्यापी सत्य है। हिन्दू समाज भी इसका अपवाद नहीं है। इस नियमानुसार वर्ग जाति में परिवर्त्तितत होते गये। वास्तव में जाति और वर्ग आमने–सामने रहने वाले पड़ोसी के समान है। बहुत मामूली भेदों से ही उनका अस्तित्व भिन्न–भिन्न लगता है।[14] डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जाति एक स्वयं मर्यादित वर्ग है। इन्हीं को जाति कहा जाने लगा।

"प्रारंभ में ब्राह्मण वर्ग अपने स्वार्थ के कारण जाति में बदल गया तथा इसी ब्राह्मण ने देश की गरीब दलित–शोषित जनता पर जाति प्रथा को थोपा। उन्होंने कहा कि मनु के सैकड़ों वर्ष पूर्व से ही जाति प्रथा अस्तित्व में थी। मनु ने इस व्यवस्था को एक दार्शनिक धरातल पर ला कर धर्मसम्मत रूप दिया। जाति से संबंधित सूत्रों को मनु ने केवल संचालन एवं संकलन व सूत्रबद्ध किया।[15]

भारतीय समाज–व्यवस्था में ब्राह्मणों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था, वह पृथ्वी का देव ही नहीं भूदेव कहलाते थे। विधि भी नियोजित करते थे। उनका संबंध समाज के अन्य जनों से रहता था। इस प्रकार वर्ग ही जाति में परिवर्त्तित होते चले गये। जाति के अन्दर ही विवाह के रीति–रिवाज के कारण अत्याधिक स्थितिशील बन गये। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में ब्राह्मणों को महत्त्व धीरे–धीरे बढ़ता गया। ब्राह्मण के मनोनुकूल धर्मग्रंथ बनें। उनका कहना है कि जाति अन्तर्गत नियमों की कठोरता ब्राह्मण में सर्वाधिक थी। विवाह के संबंध में यह कठोरता उनमें अधिक पायी जाती थी, यह कठोरता धीरे–धीरे अन्य वर्ग और जातियों के क्रमानुसार कम होते चली गई।[16]

जाति का आधार अन्ध श्रद्धा है। अपने–अपने दड़बों में बंधी थे जातियाँ औरों के लिए अपने दरवाजे भले ही बन्द रखती है, किन्तु इन सब में एक विचित्र प्रकार की सांस्कृतिक एकता है। एक बड़े सांस्कृतिक एकता रखने वाले समाज का एक छोटा–सा हिस्सा जाति है। जाति की प्रारंभ करने वाली पहली जाति ब्राह्मण है। अनुकरण और बहिष्कार के कारण अन्य वर्ग भी जाति में रूपान्तरित होता चला गया।[17]

जातिप्रथा के परिणाम

जातिप्रथा के परिणामों पर अपने विचार रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि–(1) जाति भेद के कारण ही हिन्दू का पतन हुआ। (2) वर्ण व्यवस्था के आधार पर हिन्दू समाज का पुर्नगठन संभव नहीं है, वर्ण व्यवस्था कानूनन बन्द हो जाना चाहिए। (3) वर्ण व्यवस्था के आधार पर हिन्दू समाज का पुर्नगठन उचित व नैतिक नहीं है, क्योंकि यह व्यवस्था सामान्य जनता को ज्ञान का अधिकार नकार कर उसकी अधोगति करती है तथा शस्त्र का अधिकार नकार कर उसे पुरुषत्वहीन बनाती है। (4) हिन्दू समाज के पुर्नगठन की आवश्यकता ऐसे धर्म तत्त्वों के आधार पर होना चाहिए, जिसका आधार समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व से जुड़ा हो। (5) इस उद्देश्य की सफलता हेतु जातिभेद तथा वर्ण के धर्म रूपी आधार को समाप्त कर देना चाहिए। (6) शास्त्रों का जब ईश्वरवाणी मानने की मानसिकता समाप्त हो जाएगी, तभी जाति और वर्ण का आधार नष्ट हो सकेगा।[18]

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने वर्ण और जाति को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया। समाज में व्याप्त वर्ण और जाति का खुलकर तीव्र विरोध किया। इन दोनों ही प्रथाओं को समाज के विकास के लिए अवरोधक तत्त्व बताया। कहना न होगा कि इन प्रथाओं के दुष्परिणामों से ही समाज में अस्पृश्यता की उत्पत्ति हुई।

अस्पृश्यता

"भारतीय समाज में अस्पृश्यता एक ऐसा शाप व कलंक है, जिसे कानूनी तथा संवैधानिक रूप से मिटा तो दिया है, किन्तु व्यवहार में वह आज भी कई रूपों में व्यक्त होता है। कहा जाता है कि वैदिककालीन समाज में किसी भी वर्ण के साथ अस्पृश्य का व्यवहार नहीं था। वैसे उपनिषद काल में चंडाल आदि का उल्लेख है, जिसे कालक्रम में अस्पृश्य माना जाने लगा। अस्पृश्यता एक मानसिक धारणा है जो स्मृतिकाल से ही प्रचलित हो चली थी। वस्तुतः अस्पृश्यता की उत्पत्ति के कई कारण है, किन्तु स्मृति काल में अत्यन्त निकृष्ट (घृणित) काम करने वाले को अस्पृश्य कहा गया, जिनको देखना–छूना पाप तथा उनका छाया भी सवर्णों को अपवित्र कर देता था। धीरे–धीरे अस्पृश्यों का एक ऐसा वर्ग विकसित हो गया कि अन्य लोगों ने इनके साथ कोई संबंध नहीं रखा, उन्हें स्पर्श करने के अयोग्य माना जाने लगा।[19]

अस्पृश्यता उत्पत्ति के संबंध में डॉ. अम्बेडकर ने वेद, उपनिषद, स्मृति, बौद्धग्रन्थ, धर्मशास्त्रों का इतिहास व ब्राह्मण ग्रंथ आदि का अत्यन्त सूक्ष्म व तार्किक विवेचन किया। इस अध्ययन के बाद उन्होंने अस्पृश्यता का विचार रखते हुए कहा– (1) स्पृश्य (हिन्दू) एवं अस्पृश्य में कोई नस्ल–भेद नहीं है। (2) अस्पृश्यता से पहले उनके बीच केवल सामुदायिक एवं बिखड़ेपन की भिन्नता थी, केवल बिखरे लोग ही अस्पृश्य बनें। (3) जिस प्रकार अस्पृश्यता का आधार कोई नस्लभेद नहीं है, वैसे ही उद्योग–व्यवसाय भी उसका आधार नहीं।[20]

अस्पृश्यों की उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं–(1) ब्राह्मण द्वारा बौद्ध के रूप में छितरे लोगों के प्रति घृणा की भाव (2) गौमांस का बिखरे लोगों द्वारा खाये जाना[21] (4) चांडाल और अस्पृश्य पर्यायवाची शब्द नहीं है। अस्पृश्य चांडाल से भिन्न है। (5) चांडाल की वर्गों धर्मसूत्र के कालखण्ड में निर्मित हुई, किन्तु उसके कई वर्षों बाद करीब चार सौ इस्वी में अस्पृश्यता की उत्पत्ति हुई।[22]

"अस्पृश्यता की उत्पत्ति चाहे कुछ भी कारण हों, किन्तु उसके व्यवहार के फल स्वरूप हिन्दू समाज में करोड़ों की संख्या में अस्पृश्य स्त्री– पुरुष पैदा हो गये, जिन्हें देखना, छूना ही नहीं बल्कि उनके छाया को पाप समझा गया है। उन्हें अपवित्र और जानवर से भी बदत्तर माना गया है। उनके स्थान पर कोई सामाजिक, धार्मिक विचार असंभव था, ब्राह्मणों ने अस्पृश्यों को सभी मानवीय स्थिति से दूर व अलग रखा ताकि वे समाज में प्रदूषण नहीं फैला सके।

आज भी ऐसे गाँव है, जहाँ सामाजिक दृष्टिकोण से अस्पृश्यो का अस्तित्व अलग–थलग है।"[23] डॉ. अम्बेडकर ने भी सूक्ष्म अवलोकन किया है कि "अस्पृश्यता पर लज्जित होने के बजाय हिन्दू उसे हमेशा जायज ठहराने की कोशिश करते हैं। इसका समर्थन में उनका यह तर्क है कि अन्य देशों की तुलना में भारत में दास अथवा गुलाम प्रथा कभी नहीं रही और अस्पृश्यता किसी भी दशा में उतना बुरी नहीं जितनी कि दासता है। यह बात स्व० लाला लाजपत राय जैसे महान व्यक्तित्व ने अपनी पुस्तक "अनहैपी इण्डिया" में कहीं।"[24] अस्पृश्यत दासता से कहीं अधिक घिनौना एवं पीड़ा दायक है। दासता एवं अस्पृश्यता में इतना अन्तर है कि अस्पृश्यता परतंत्र समाज व्यवस्था का सबसे कुत्सित व संवेदनहीन रूप है। दासता कभी अनिवार्य नहीं रही, परन्तु अस्पृश्यता अनिवार्य व्यवस्था है। कोई व्यक्ति किसी को भी दास के रूप में रख सकता है। यदि वह किसी को दास न रखना चाहे तो उस पर ऐसा न करने की कोई जबरदस्ती नहीं है किन्तु अस्पृश्य के घर में जन्म ले ले फिर सभी तरफ से अस्पृश्य वह हो जाता है। व्यक्ति यदि एक बार दास हो गया तो यह आवश्यक नहीं कि वह जीवन भी दास ही रहेगा किन्तु अस्पृश्यता में ऐसा कोई अपरिवर्तनशील है।

डॉ. अम्बेडकर के विचार में 'न तो दासता ही स्वतंत्र समाज व्यवस्था है और न ही अस्पृश्यता। यहाँ उन्होंने प्रश्न किया "क्या दासता अथवा अस्पृश्यता की स्थिति में शिक्षा, नैतिक आदर्श, सुख, संस्कृति और समृद्धि संभव है? यदि इसे सूक्ष्मता से देखें तो दासता में शिक्षा, नैतिक, आदर्श, सुख, संस्कृति और समृद्धि की गुंजाइश है। दासता की भाँति अस्पृश्यता में स्वतंत्र समाज के ये कतई संभव नहीं है। उसमें एक स्वतंत्र समाज व्यवस्था के सभी अलाभ है।"[25]

डॉ. अम्बेडकर जैसे क्रांतिकारी विचारक यदि समाज में पैदा होते रहे तो संभवतः ऐसा युग आता है, जहाँ जाति–विहीन समाज की स्थापना का स्वप्न साकार होते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने भी देश एवं समस्त समाज को सुखी, समृद्धि एवं सम्पन्न बनाने का स्वप्न समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के रूप में देखा था किन्तु 21वीं सदी में भी भारतीय समाज धर्म, जातियों, सम्प्रदायों के रूप में बाँटा हुआ है।

भारतीय समाज व्यवस्था में आज भी कुछ परम्परागत यथास्थितिवादी लोग समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व के पक्ष में नहीं है। गाँव में आज भी रूढ़ियों कूपमंडुकताओं के शिकार हैं। वहाँ जाति के बीच लोकतंत्र नहीं है, जातियों के भीतर भले ही हों। प्रत्येक जाति के अपने–अपने समूह अपने–अपने गाँव की लोकतांत्रिक अवधारणा के स्वप्न को ही क्षीण कर देते हैं। डॉ. अम्बेडकर के समग्र क्रांति के मूल गौतम बुद्ध के दर्शन में निहित है, जो समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, करुणा और मैत्री पर आधारित है। उनकी क्रांति का आधार मार्क्स की तरह आर्थिक नहीं है। क्रांति के लिए हिंसा का सहारा न तथागत बुद्ध ने लिया, न ही डॉ. अम्बेडकर ने। उन्होंने समाज परिवर्त्तन में हिंसा को कोई स्थान नहीं दिया।

वैज्ञानिक जगत में चाहे किसी राकेट को अंतरिक्ष में छोड़ा जाना हो या पानी में जहाज को समुद्र में बिना यज्ञ अनुष्ठान और नारियल तोड़े बिना सम्पन्न नहीं किया जा सकता। परम्परा और अति आधुनिकता के अन्तर विरोधों के बीच जाते वैज्ञानिक (पौराणिक हिन्दू) की जो स्थिति कर्मकाण्ड में है, वही स्थिति उसके दृष्टिकोण और सोच–विचार की भी है, वह वैज्ञानिक युग में भी कर्मकाण्डी और यथा स्थितिवादी ही हैं।[26]

इन्हीं अवैज्ञानिक यथास्थिति विचार जिसमें मानवीय व लोकतांत्रिक मूल्य के अभाव हैं, अम्बेडकर दर्शन भर्त्सना करता है। "जिन मूल्यों को सवर्ण भारतीय मानस आज के वैज्ञानिक युग में एक अतीत की अमूल्य धरोहर के रूप में संजोकर रखे हुए हैं, उसे यह अर्न्तमूल्यांकन करना चाहिए कि आज के वैज्ञानिक युग में उसके जर्जर मूल्य उसकी यह कुत्सित वर्ग और जाति रूपी सामाजिक व्यवस्था उसके सामाजिक और राष्ट्रीय विकसित में अवरोधक हो सकता है।[27] इन्हीं कारणों से असमानता, इससे उत्पन्न अत्याचार, आपाधापी व लूट खसोट दिखाई पड़ता है। देश में अशिक्षा है, गरीबी है। इन्हीं बहुसंख्यक दलित–शोषित के विकास व सुरक्षा हेतु डॉ. अम्बेडकर ने जाति विहीन समतावादी समाज के लिए सामाजिक क्रांति का आह्वान किया। 13 अक्टूबर 1935 ई० को नासिक के एक अधिवेशन में डॉ. अम्बेडकर ने कहा– "आठ करोड़ अस्पृश्यों को गुलामी में रखने वाला बहुजन समाज को अज्ञान, गरीबी, रूढ़ियों में ढकेलने वाला, महिलाओं को मानवीय अधिकार से विमुख करने वाला क्या यही हिन्दू धर्म है? हिन्दू कहना और

मंदिरों में प्रवेश नहीं देना, नलों पर पानी नहीं भरने देना, अछूतों को स्पर्श को पाप कहना, ये क्या हिन्दू धर्म के तत्व हैं। ऐसा धर्म भला किस काम का। इसका होना न होना समान है। दस वर्ष तक हमने आंदोलन कर उन्हें सुधार के अवसर दिये, किन्तु वे आत्म मूल्यांकन को तैयार नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि धैर्य रखो हजारों सालों से चली आ रही प्रथा व परम्परा एकदम समाप्त नहीं हो सकती।[28] आगे उन्होंने कहा– "मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ हूँ यह मेरा दुर्भाग्य है किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि हिन्दू धर्म में कदापि नहीं मरूँगा।[29]

वस्तुतः यह विचार उनके सम्पूर्ण जीवन के ऐतिहासिक सामाजिक व सांस्कृतिक इतिहास के गम्भीर मंथन के साथ–साथ कल्याणकारी भावों का निचोड़ था, जिसका उत्स बौद्ध धर्म में फूटा। सदियों से हिन्दू धर्म से तिरस्कृत व बहिष्कृत दलित जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था के अंग न होते हुए भी उनके सभी स्वार्थों की पूर्ति करता रहा, की अस्मिता को उन्होंने बौद्ध–धर्म दर्शन में पाया।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, स्वतंत्रता पूर्व आंदोलनों में अच्छे–बूरे अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि अस्मिता की खोज उसकी पुरातन ऐतिहासिकता में ही क्रांतिकारी ढंग से किया जा सकता है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का बौद्ध धर्म– परिवर्त्तन भारत वर्ष में एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक क्रांति थीं, जो हिन्दू सुधारवादी व पुर्नजागरण के थोथे दलील के विरुद्ध प्रति क्रांति थी। दलितों के लिये यह धर्म की पहचान से बढ़कर उसके वंश, उसकी परम्परा उसकी संस्कृति की पहचान थी।[30] छठी शताब्दी ईसा पूर्व चार्वाक, लोकायत, तथागत गौतम, बुद्ध, फ्रांसीसी पाश्चात्य दार्शनिकों और आधुनिक युग के मार्क्स का साम्यवादी आंदोलन मूलतः आन्तरिक क्रांति थी, जिसने विचार भाव सबको बदलने का पृष्ठभूमि तैयार किया। "तथागत बुद्ध, फ्रांसीसी और कार्ल मार्क्स की क्रांतियों ऐसी आत्मिक क्रांतियाँ थी, जिन्होंने व्यक्ति की गरिमा को बढ़ाया तथा उसे ईश्वर के चुंगल से मुक्त किया। प्राचीन समाज में महत्व का केन्द्र ईश्वर के स्थान पर आधुनिक समाज में व्यक्ति की महत्ता एवं सत्ता का केन्द्र स्थापित हुआ। उसी मानव ने मानव के ऊपर होने वाले अत्याचारों व अन्याय का न केवल विरोध किया बल्कि असमानता, विषमता, आर्थिक विपन्नता की खाईयों को पाटने हेतु निरंतर संघर्ष किया, साथ ही जाति एवं वर्ण की जननी चार्त्तुवर्ण व्यवस्था पर हमले किये।[31] इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषणों एवं लेखों में सर्वाधिक बल जातिप्रथा के उन्मूलन पर दिया है तथा भारतीय समाज में न्याय और प्रगति के लिए उसे बाधक माना।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध दर्शन से प्रभावित होकर डॉ. अम्बेडकर ने पाश्चात्य दर्शन तथा समाज व्यवस्थाओं का सूक्ष्म अध्ययन व चिंतन किया और उसी अनुरूप सामाजिक विचारों के समस्त केन्द्र बिन्दु में मनुष्य को रखा। वे मानव जाति में व्याप्त समस्त सामाजिक विभेद व बुराईयों के विरोध में थे। वे एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे, जहाँ मनुष्य–मनुष्य के प्रति आदर प्रेम, बन्धुत्व और मानवीयता से जुड़ा हो। जहाँ लोग एक–दूसरे शोषण न करता हो। ये वही मानव व नैतिक मूल्य है, जिसकी माँग फ्रांसीसी क्रांति के दौरान रूसों, वाल्टेयर, दिरों, मान्टेस्क्यू जैसे विचारकों ने मानवीय स्वतंत्रता हेतु की थी।

संदर्भ सूची

1. रजक, संजय (2009) *डॉ. अम्बेडकर जीवन और दर्शन,* सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 44।
2. जाटव, डी. आर. (1996) *डॉ. अम्बेडकर का नैतिक दर्शन,* समता प्रकाशन, जयपुर, पृ. 14।
3. रस्तौगी, आर. के. (1989) *भारतीय सामाजिक संस्थाएँ एवं संस्कृति,* श्लाका प्रकाश्ज्ञन, मेरठ, पृ. 34।
4. वही, पृ. 34।
5. वही, पृ. 34।
6. वही, पृ. 35।

7. अम्बेडकर, बी. आर. (1998) *बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय,* खण्ड–6, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 120।
8. जाटव, डी. आर. (1996) *डॉ. अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार,* समता प्रकशन, जयपुर, पृ. 20।
9. वही, पृ. 20।
10. अम्बेडकर, बी. आर. (1998) *बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय,* खण्ड–7, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 228।
11. वही, पृ. 228।
12. जाटव, डी. आर. (1996) *डॉ. अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार,* समता प्रकाशन, जयपुर, पृ. 22।
13. रणसूभे, सूर्य नारायण (2001) *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 66।
14. उद्धृत रणसूभे, वही, पृ. 66।
15 वही, पृ. 66, 67।
16. वही, पृ. 68।
17. वही, पृ. 68।
18. वही, पृ. 73।
19. जाटव, डी. आर. (1996) *डॉ. अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार,* समता प्रकाशन, जयपुर, पृ. 37।
20. वही, पृ. 37, 38।
21. वही, पृ. 38।
22. रणसूभे, सूर्य नारायण (2001) *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 76।
23. अम्बेडकर, बी. आर. (1998) *बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय,* खण्ड–7, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 26।
24. वही, पृ. 26।
25. वही, पृ. 35।
26. सिंह, रधुवीर (2001) *इक्कीसवीं सदी में अम्बेडकरवाद,* अतीश प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 58।
27. वही, पृ. 58।
28. शाहरे, माला एवं अनिल; नलिनी (1993) *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की संघर्ष यात्रा एवं संदेश, शाहो,* सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 154।
29. वही, पृ. 154।
30. वही, पृ. 154।
31. सिंह, रधुवीर (2001) *इक्कीसवीं सदी में अम्बेडकरवाद,* अतीश प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 50।

****